छायावादी युग में मुक्तक और गीतों की परम्परा

डॉ. राखी उपाध्याय,

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

सारांश

किसी भाव, विचार, घटना या स्थिति को स्वतंत्र स्फुट रूप में व्यक्त करना मुक्तक रचनाकर का स्वाभाविक कर्म है। स्वच्छन्द भाव को स्वाधीन श्लोक पद या गीत में प्रकट करना नितान्त स्वाभाविक है। प्रख्यात प्रबंध–काव्यकारों ने प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत मुक्तक की सत्ता स्वीकार की है और पृथक स्वतंत्र रूप से मुक्तक भी लिये हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावादी रचनाएं अपने अभिव्यंजना–कौशल एवं रोमानी सौन्दर्य चेतना के कारण विशिष्ट स्थान रखती है। काव्य शिल्प का जैसा सौष्ठव छायावादी गीतों और मुक्तकों में लक्षित होता है वैसा खड़ी बोली के किसी अन्य काव्य में नहीं है। वस्तुतः छायावादी काव्य का प्राण गीत है। गीत को जो शक्ति चारुत्व आकर्षण और सम्मोहन इस युग के काव्य में मिला वैसा पहले कभी नहीं मिला था। वैष्णव गीतों की मोहकता को भी छायावादी गीत पीछे छोड़ गये क्योंकि इसमें भक्ति, प्रेम, श्रृंगार, करुण आदि अनेकानेक भावों को ग्रथित करने में कवियों को सफलता मिली है।

मुख्य शब्द – *छायावाद, छायावादी कवि, मुक्तक, गीत, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, मुक्तक और गीतों की परम्परा*

छायावादी कविता का अधिकांश रूप मुक्तक और गीत रूप में है। इस युग के मुक्तक को 'प्रगीत मुक्तक' कहा जाता है। वस्तुतः प्रगीत मुक्तक शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक' शब्द का समानार्थी हो गया है। प्रगीत मुक्तक में गीत (सांग) तथा मुक्तक दोनों के तत्व विद्यमान हैं। प्राचीन मुक्तकों की तरह छायावाद का मुक्तक पाठ्य भी है तथा गीत (सांग) की तरह गेय भी। छायावादी कवियों ने प्रगीत मुक्तक और गीत दोनों ही लिखे हैं। इनमें प्रथम अंग्रेजी शैली के अधिक निकट है तथा द्वितीय भारतीय वैष्णव–पद–शैली या भजन–पद्धति के।

प्रसाद की कविताओं के 'झरना' संग्रह में अधिकांश कविताएं प्रगीत मुक्तक (लिरिक) कोटि की है, कुछ कविताएं ऐसी अवश्य हैं जिन्हें गीत (सांग) कहना चाहिए। यहाँ गीत से हमारा अभिप्राय पद या भजन–शैली के गीत से है। 'झरना' के अन्त में 6 कविताएं 'बिन्दु' शीर्षक से हैं। इनमें से प्रथम को छोड़कर शेष पांचों पद–शैली के गीत हैं। 'लहर' की अधिकांश प्रगीत मुक्तक की श्रेणी की हैं। वैष्णव–भजन शैली का एक भी गीत 'लहर' में नहीं है। 'अशोक की चिन्ता' को छोड़कर, जो कि विचारात्मक कोटि की रचना है, 'शेरशाह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' ओर 'प्रलय की छाया' आदि अतुकान्त वर्णनात्मक रचनाऐं हैं। 'आँसू' गीतिकाव्य की कोटि में आता है। उसकी शैली प्रगीत मुक्तक की ही है। उसमें सूक्ष्मकथा भी है यद्यपि वह प्रायः अत्यन्त अस्पष्ट एवं धूमिल है। 'कामायनी' में कथा का अनुबन्ध तो है किन्तु प्रगीत मुक्तक के प्रति कवि का मानसिक आग्रह होने के कारण वह अनुबन्ध कुछ शिथिल है।

'कामायनी' के 'इड़ा' सर्ग में पद–शैली के गीत है। 'प्रसाद' के सभी नाटकों में प्रगीत मुक्तक और गीत हैं। इनमें अधिक संख्या पाश्चात्य शैली के मुक्तकों की है, यद्यपि कुछ गीत वैष्णव परम्परा के भी मिलते हैं।

'पंत' की प्रायः किसी भी कृति में पद–शैली के गीत नहीं हैं, उनकी सभी कविताएं नवीन प्रगीत–मुक्तक पद्धति पर हैं। 'निराला' के गीतों और प्रगीतों के विविध रूप हैं। पद–शैली के केवल दो गीत उनकी 'गीतिका' में हैं। महादेवी और रामकुमार वर्मा ने नवीन शैली के प्रगीत मुक्तक लिखे हैं, भजन–शैली के गीत नहीं।

हिन्दी की मुक्तक–रचना–परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। विद्यापति, सूरदास, नन्ददास, कबीरदास, तुलसीदास, मीराबाई, दवब, मतिराम, घनानन्द, बिहारी, भारतेन्दु, बालमुकुन्द गुप्त, राधाकृष्णदास, गोपालशरण सिंह, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, ब्रद्रीनाथ भट्ट, मुकुटधर पांडेय आदि छायावाद के पूर्ववर्ती मुक्तक रचनाकार हैं। छायावाद से पूर्व के मुक्तक रचनाकारों ने पाठ्य और गेय दोनों प्रकार के मुक्तक लिखे हैं। छायावादी मुक्तकों के दो भेद किये जा सकते हैं– प्रगीत मुक्तक और गीत मुक्तक। आजकल प्रगीत मुक्तक के लिए अंग्रेजी के 'लिरिक' तथा गीत मुक्तक के लिए 'सांग' शब्द का व्यवहार किया जाता है। दोनों शब्दों का प्रयोग गीतिकाव्य (लिरिक पोइट्री) के लिए हो सकता है। ये मुक्तक अधिकांश में अपने पूर्ववर्ती हिंदी मुक्तकों से भिन्न है, यद्यपि कुछ अंशों में दोनों में समानता भी है। जहाँ तक अन्तर का प्रश्न है, वह विस्तार से विचारणीय है। सिद्धों, नाथों, सन्तों, रीतिकालीन कवियों तथा भारतेन्दु एवं द्विवेदीकालीन मुक्तक रचयिताओं के मुक्तकों की अपनी पृथक्–पृथक् विशिष्टिताएँ हैं। सिद्धों, सन्तों तथा भक्तों के गीत रागाश्रित हैं। उनमें संगीत के शास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। सिद्धों के चर्यापदों में प्रत्येक पद के साथ राग का नाम दिया हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती के मतानुसार ये राग संख्या में कुल 18 हैं।[1] कबीर इत्यादि सन्त कवियों के 'शब्द', 'सलोकु' और 'रमैनी' आदि भी गेय पद हैं। इससे पूर्व बौद्ध तथा नाथपंथी सिद्धों ने ध्रुवक देकर रागाश्रित पद लिखे थे। डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि कबीर के पदों में इसी परम्परा का अनुसरण है।[2] विद्यापति के पद भी सुरलय के अनुसार संगीतशास्त्र के नियमों के आश्रित हैं।[3] सूरदास के पदों में शास्त्रीय रागों का प्रयोग हुआ है। प्रायः गीतों पर शीर्षक के स्थान पर रागों के नाम दिये हुए हैं। यही बात तुलसी के गीतों के विषय में भी ठीक है। गीतावली और विनय–पत्रिका में प्रायः इन राग–रागिनियों का प्रयोग हुआ है– राग केदारा, राग आसावरी, राग जैतश्री, राग विलावल, राग सोरठ, राग धनाश्री, राग कान्हरा, राग कल्याण, राग ललित, राग विभास, राग नट, राग टोड़ी, राग सारंग, राग सूहो, राग मलार, राग गौरी, राम मारू, राग भैरव, राम चंचरी, राग वसन्त, राग रामकली। मीरा की पदावली या आगे चलकर भारतेन्दु आदि के स्फुट पदों में भारतीय संगीतशास्त्र की इसी परम्परा का अनुसरण मिलता है। जयदेव से लेकर भजन–शैली के नवीनतम रचनाकारों तक की कृतियों में राग–रागिनियाँ प्रायः यही है। "आज संगीत में मुख्य जितनी तालें प्रचलित हैं, वे प्रायः सभी गीत–गोविन्द में हैं।"[4] छायावाद के पूर्व के गीतों में शास्त्रीय संगीत का अनिवार्य बन्धन है। छायावाद के कुछ पूर्व से ही प्रगीत मुक्तकों में यह बन्धन नहीं मिलता। छायावाद के पूर्व रूप 'स्वच्छन्दतावाद' के कवियों ने नूतन प्रगीत मुक्तक शैली का श्रीगणेश किया। मुकुटधर पांडेय, बदरीनाथ भट्ट, रामचरित उपाध्याय तथा मैथिलीशरण गुप्त इनमें प्रमुख हैं।

छायावादी मुक्तकों की प्रधान विशेषता अध्यान्तरिकता (सबजेक्टिविटी) है। इन मुक्तकों में संगीतशास्त्र का बन्धन भी नहीं है। गेय मुक्तकों, जिन्हें गीत कहना चाहिए, में तो स्वर, ताल तथा शास्त्रीय रागों की योजना छायावादी कवियों ने

कहीं–कहीं की भी है। लेकिन सामान्य मुक्तकों, जिन्हें प्रगीत कहना चाहिए, में स्वर–ताल की योजना बिल्कुल नहीं है। मध्यकालीन सन्तों के गीतों और भजनों में राधा–कृष्ण के प्रेम की धारा प्रवाहित हुई है, वे अवश्य ही छायावादी मुक्तकों की तुलना में कम अध्यान्तरिक तथा वैयक्तिक हैं। यद्यपि मीराबाई के गीतों में व्यक्तिगत सम्बन्ध की तन्मयता अधिक है लेकिन उनके गीत भी साधना–पद्धति के विविध पक्षों का ही प्रतिपादन करते हैं। रीतिकाल का सारा मुक्तक साहित्य एक बंधी हुई परिपाटी के भीतर है। छायावादी मुक्तकों का प्रधान लक्षण एवं आकर्षण उनकी व्यक्गित अनुभूतिमूलकता (सबजैक्टिविटी) तथा भावात्मकता (इमोशनल क्वालिटी) है। व्यक्तिगत भावना के आधार पर रचे हुए गीतों और प्रगीतों का अत्यन्त सुष्ठु रूप छायावादी कविता के अन्तर्गत उपलब्ध होता है। 'कनक किरण के अन्तराल में लुक छिपकर' चलने वाले के प्रति 'प्रसाद' का यह निवेदन–

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते ही क्यों?
नतमस्तक गर्व वहन करते
यौवन के धन रसकन ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य!
बता दो मौन बने रहते हो क्यों?
अधरों के मधुर कगारों में
कलकल ध्वनि की गुंजारों में
मधु सरिता सी यह हँसी
तरल अपनी पीते रहते हो क्यों?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली–
अब सान्ध्य–मलय–आकुलित
दुकुल कलित हो, यों छिपते हो क्यों?[5]

वैयक्तिक भावना का ऐसा ही सचेष्ट प्रकाशन 'प्रसाद' के 'लहर' संग्रह के तीसरे प्रगीत मुक्तक में देखा जा सकता है। 'मधुप गुनगुना कर कह जाता' से प्रारम्भ होने वाली कविता की ये पंक्तियां–

यह विडम्बना! अरी सरलते तेरी हँसी उड़ाऊं मैं।
भूलें अपनी या प्रवंचना औरों की दिखलाऊं मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊं मधुर चांदनी रातों की।
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
आलिंगन में आते–आते मुसक्या कर जो भाग गया।

X X X

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएं आज कहूं?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं रहूं?
सुनकर तुम क्या भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।[6]

छायावाद के कुछ गीत मुक्तक प्राचीन पद–शैली पर हैं। भक्तों और सन्तों ने टेक या ध्रुवक देकर पद लिखे हैं। इस 'टेक' को 'स्थायी' भी कहा जाता है। यह 'स्थायी' गीत की प्रथम पंक्ति के रूप में होता है तथा आगामी पंक्तियों के साथ इसका अंत्यानुप्रास रहता है।

प्रसाद का यह गीत इसी प्रकार का है–

अमा को करिये सुन्दर राका।
फैले नव प्रकाश जीवन धन! तब मुख–चन्द्र–विभाग का।।
मेरे अन्तर में छिपकर भी प्रकटे मुख सुषमा का।

प्रबल प्रभंजन मलय मरुत हो, फहरे
प्रेम–पताका।।[7]

परन्तु भजन–शैली के मुक्तक छायावादी कविता में बहुत सीमित संख्या में हैं। इन कवियों ने गीत–मुक्तक–रचना की पद्धति का आविष्कार किया। इनके गीतों में टेक (स्थायी) के बाद में आने वाली पंक्तियां नए ढंग के पद (स्टेंजा) के रूप में होती हैं। इस अन्तरा का विधान भी कहते हैं। यह अन्तरा–पद्धति छायावाद के प्रायः सभी गीतों में देखी जाती है। देखिए निराला का यह गीत–

सोचती अपलक आप खड़ी
खिली हुई वह विरह वृन्त की
कोमल कुन्द–कली।
नयन नगन, नवनील गगन में
लीन हो रहे जिन धन में,
यह केवल जीवन के वन में
छाया एक पड़ी।[8]

'गीत' शब्द का प्रयोग आजकल कई अनिश्चित अर्थों में हो रहा है। गीत, प्रगीत, गीति आदि पारिभाषिक शब्द सन्देहास्पद अर्थों में प्रयुक्त हुए देखे जा सकते हैं। यदि हिंदी–कविता के सन्दर्भ में 'गीत' शब्द से प्रकट होने वाले आशय की परीक्षा की जाए, तो पता चलता है कि यह शब्द ऐसी कविता के अर्थ का द्योतन करता है जिसमें काव्यकला और संगीतकला दोनों के तत्वों का समुचित समन्वय हो। विद्यापति, सूर और मीरा के काव्य में 'गीत' का अर्थ यही है। लेकिन चूंकि आधुनिक कविता ने 'गीत' की इस सीमा का अतिक्रमण कर दिया है, इसलिए 'गीत', 'प्रगीत' तथा 'गीति' आदि शब्दों का व्यवहार विवश होकर करना पड़ता है। 'गीति' शब्द की 'प्रगीत' या 'लिरिक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

काव्य की अनेक विधाएं हैं। प्रायः ये काव्य–रूप परस्पर इस प्रकार मिश्रित हो जाते हैं कि एक को दूसरे से पृथक् करके पहचानना कठिन है, इसीलिए कई अवस्थाओं में काव्य के भेदों और उपभेदों सम्बन्धी वर्गीकरण सन्तोषप्रद नहीं हो पाता। फिर भी प्रत्येक प्रकार के काव्य का अपना एक प्रधान स्वर होता है जो उसकी पृथक् सत्ता को ज्ञापित करता है।[9] 'गीत' में भी यही निजी स्वर विद्यमान रहता है। यह स्वर एक आन्तरिक तत्व है जो सरलता से ग्राह्य नहीं है। हां, इस मूल स्वर (ऑरिजिनल टोन) के आधार पर काव्य का जो रूप या कलेवर (फॉर्म या बॉडी) बनता है वह सहज ही चीन्हने योग्य होता है। आज विश्व–साहित्य में गीतों के जो रूप हैं, उन्हें पहचानना अपेक्षाकृत सरल है। लेकिन आदि काल में गीत का रूप कैसा था तथा काव्य के साथ उसका सम्बन्ध किस कोटि का रहा होगा? यह केवल अनुमानित ही किया जा सकता है। कुछ विचारक साहित्यिक गीत को लोकगीत (फोक सांग) की सन्तान (ऑफस्प्रिंग) स्वीकार करते हैं। लेकिन प्रारम्भिक ग्राम–गीत में प्रबन्ध, नाटक और गत तीनों के तत्व विद्यमान थे। पश्चिम के गाथा–गीत (बैलड्स) इसी प्रकार के थे।[10] आगे चलकर साहित्य गीत की अपनी एक स्वतन्त्र विधा बन गई। अनेक अंग्रेज आलोचक एक स्वर से यह घोषणा करते हैं कि पुराकालीन यूनान में वीणा (लाइर) आदि वाद्य–यन्त्रों के सहयोग में जो कविता गाई जाती थी उसी को गीत (लिरिक) कहते हैं।[11] भारत में भी सारंगी पर भरथरी गोपीचन्द आदि के गीत गाए जाते रहे हैं लेकिन हमारे लिए यहाँ गीत के उद्भव का प्रश्न इतना प्रधान नहीं है जितना प्रबन्ध और नाट्य काव्यादि के साथ उसके सम्बन्ध का। कालक्रम की दृष्टि से परिष्कृत गीत निश्चय ही प्रबन्ध और नाट्यकाव्य के बाद उत्पन्न हुआ। प्रबन्ध में किसी जातीय संस्कृति की एक उच्च स्तर पर काव्योचित ढंग से अवतारणा की जाती है। उसमें घटना–वैचित्र्य और पात्र–वैविध्य रहता है। आकार

की दृष्टि से वह एक विशाल सर्ग–बद्ध रचना है। वस्तुतः प्रबन्धकाव्य एक विषय–प्रधान (आबजेक्टिव) कृति का नाम है। नाटक भी तत्व की दृष्टि से प्रबन्धकाव्य से मिलता है लेकिन वह अभिनेय होता है। यद्यपि इन दोनों प्रकार के काव्यों में गीतों के लिए भी अवकाश रहता है किन्तु गीत रूप, आकार और तत्व की दृष्टि से इन दोनों से भिन्न है। गीत का रूप और आकार लघु होता है। वह वर्णनात्मक न होकर भावाभिव्यंजक भी होता है। वह एक आत्मनिष्ठ रचना है। विषयीप्रधानता (सबजेक्टिविटी) और गेयता उसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसे नाटक और प्रबन्धकाव्य से पृथक करती हैं। पुराकाल में गीत में संगी का अनिवार्य बंधन था। यह बंधन विकासमान कला–गीत में क्रमशः शिथिल होता गया। आज का गीत अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है।[12] अंग्रेज आलोचक यूपहम ने भी नए गीत के लिए ठीक यही बात कही है।[13]

गीत कविता का श्रृंगार है। वह आकार में लघु होकर भी प्रभाव में महान है। नाटकों और प्रबंधकाव्यों में सरस प्रसंग यत्र–तत्र ही आ जाते हैं। प्रायः पाठक या दर्शक का मन वर्णनों या संलापों की शुष्कता में उलझा रहता है। गीत की सम्पूर्ण आत्मा ही रसमयी होती है। उसमें एक–एक पंक्ति, एक–एक शब्द सार्थक एवं भावव्यंजक होता है। इतिवृत्त के लिए गीत में अधिक अवकाश नहीं। कवि के मन का हर्ष–शोक, राग–विराग या आशा–उल्लास गीत में ही सुचारू रूप से व्यक्त हो सकता है अतः उसमें प्रभावात्मकता अत्यधिक मात्रा में रहती है। जैसी सहज अनुभूति और अनायास अभिव्यक्ति गीत में मिलती है, वैसी काव्य के अन्य स्वरूपों में नहीं। गीत की जनप्रियता और गीत–पद्धति के अतिशय प्रसार का मूल मंत्र यही है। आजकल काव्य में गीत का महत्व इतना बढ़ गया है कि अंगेज आलोचक ड्रिंकवाटर ने गीत और काव्य दोनों को परस्पर पर्यायवाची शब्द कहा है।[14] भाव और कला के निजी गुणों के कारण ही आज विश्व–साहित्य में गीतों के अनेक रूप प्रचलित हो गए हैं। उन सबकी सूक्ष्मताओं में प्रवेश न करते हुए यहाँ केवल यह कहना पर्याप्त है कि गीत काव्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है। हिंदी की छायावादी कविता के लिए यह एक गौरव का विषय है कि उसका अधिकांश गीत–रूप में है।

भावना और मंडनशिल्प सम्बन्धी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो कि गीतिकाव्य का प्राण हैं। गीत के कुछ अनिवार्य तत्व हैं–

1. आत्माभिव्यक्ति
2. भावातिरेक
3. एकरूपता
4. संगीत तत्व
5. संक्षिप्तता

गीत में कवि आत्माभिव्यंजना करता है। वैयक्तिक भावना का सम्बन्ध काव्य में भावपक्ष से है किन्तु उससे गीत के विधान का भी निर्माण होता है। गीतों के विविध प्रकारों में अनुभूति की वैयक्तिकता समान रूप में विद्यमान रहती है। जब भावना का निजीपन शैली के निजीपन में प्रकट होता है तब गीत की सृष्टि होती है। छायावादी कविता विषयीप्रधान (सबजैक्टिव) है। उसमें विषय चाहे आत्मजगत का हो या बाह्य–जगत् का, कवि ने उसे वैयक्तिक ढंग से ही ग्रहण और अभिव्यक्त किया है। व्यक्ति की भावभूमि के बिना गीत में संवेदनशीलता आ ही नहीं सकती। छायावादी कवियों ने वैयक्तिक भावभूमि पर आधारित अत्यन्त प्रभविष्णु गीत लिखे हैं। राग–विराग, आशा–आकांक्षा, विरह–मिलन तथा शोक–करुण आदि मनोभावों को इन कवियों ने विविध रूपों में व्यक्ति किया है।

गीत में घनसंश्लिष्ट भावना (इन्टैन्सिफाइड इमोशन) का सहज विस्फोट होता है। आवेश के बिना गीत की रचना संभव नहीं। जब कवि के हृदय में रागात्मक अनुभूति की उमड़न–घुमड़न अधिक बढ़ जाती है, तब वह गीत–रूप में उसे बाहर निकालता है। गीत में

कवि तीव्र भावावेग की अन्तर्ज्वाला को प्रकट करता है। उसका अन्तर्दहन ही गीत बन जाता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि गीत के लिए केवल अनियंत्रित मनोवेग ही अपेक्षित है। वस्तुतः गीत काव्य–कला का इतना सुष्ठु रूप है कि उसे संयमित एवं नियमित भी होना पड़ता है। रागात्मक अनुभूति की सचाई उसके लिए आवश्यक शर्त है। अत्यन्त मनोदशा में भी गीत लिखा जा सकता है। महादेवी का कथन है कि गीत में कवि का भावावेग अत्यन्त संयमित एवं नियन्त्रित रूप में ही प्रकट होना चाहिए। तभी वह प्रभावशाली हो सकता है।

छायावादी कविता में पंत में भावावेग की गति अपेक्षाकृत कुछ मन्द है। इसका प्रधान कारण भाव–तत्व पर कल्पना और बुद्धि–तत्व का अनावश्यक अधिकार है।

मूंद पलकों में प्रिया के ध्यान को
थम ले अब, हृदय! इस आह्वान को!
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को!
तेरे उज्ज्वल आंसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय, उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएं, गाएंगी सर्वदा![15]

उनकी प्रतिभा विशुद्ध गीतात्मक है। भावों का आवेग उनके गीतों से छलका पड़ता है। उन्होंने तीव्रातितीव्र भावों को सह–जातिसहज ढंग से व्यक्त किया है। मधुर अतीत की कैसी विकल स्मृति नीचे की पंक्तियों में है–

न छेड़ना उस अतीत स्मृति से
खिंचे हुए बीन तार कोकिन
करुण रागिनी तड़प उठेगी
सुना न ऐसी पुकार कोकिल
हृदय धूल में मिला दिया है
उसे चरण–चिन्ह सा किया है
खिले फूल सब गिरा दिया है
न अब बसन्ती बहार कोकिल[16]

गीत में एकरूपता या एकान्विति अपेक्षित है। यह गुण अनुभूति की इकाई और समत्व से आता है। पूर्ण गीतात्मक इकाई (कम्प्लीट लिरिक यूनिट) गीत का प्राण है। इसके अभाव में गीत का बंधन शिथिल हो जाता है। सफल गीत में अखंड भावना की त्वरित अभिव्यंजना होती है। गीतात्मक आवेश के क्षण कवि के लिए इतने चेतन होते हैं तथा उसकी चित्तवृत्ति उस समय इतनी अधिक आत्म–केन्द्रित हो उठती है कि एक से अधिक भावनाओं के लिए वहां अवकाश नहीं रहता। आवेग और उत्तेजना एक ही मूल भाव का वहन करती है। अन्य भाव यदि आते भी हैं तो नाममात्र को। एक ही केन्द्रीय भावना गीत में आद्यन्त रहती है। कुछ प्रलम्ब गीतों में कुद सहकारी भाव भी कहीं–कहीं झलका करते हैं लेकिन वे सब एक ही प्रधान भाव की प्रभाव–वृद्धि में योगदान देते हैं गीत की स्थिति लघु–कथा और रेखाचित्र की तरह है। कहानीकार जीवन के किसी एक ही आकर्षक पक्ष को प्रस्तुत करना है और रेखाचित्र का सृष्टा भी अपनी तूलिका के कुछ ही संस्पर्शों (टचेज़) से मनोहारी चित्र खड़ा कर देता है, इसी प्रकार गीतिकार भी अत्यन्त सीमित शब्दावली में एक ही मूल भाव को अभिव्यक्त करके समाहित प्रभाव उत्पन्न करता है। इन तीनों कलाकारों को उपादान–कृच्छता के साथ कर्तव्य–गुरुता का सामना करना पड़ता है।

छायावादी गीतों में एकरूपता का गुण प्रायः मिलता है। महोदवी का तो प्रत्येक गीत किसी पूर्व–निश्चित योजना के अनुसार भावना की एक ही धुरी पर टिका है। निराला की 'गीतिका' के गीतों में भी यह गुण है यद्यपि उनके भाव जटिल तथा शैली प्रायः दुर्बोध्य है। सारी

'गीतिका' में दो–चार गीत ही ऐसे होंगे जो भाव और कला की दृष्टि से कुछ सरल एवं बोधगम्य है।

पंत के गीतों में भाव पदों में कुछ बिखर सा जाता है लेकिन उनकी कृतियों से भी ऐसे अनेक गीत चुने जा सकते हैं जिनमें एकान्विति है।

प्रसाद के नाटकों तथा झरना, लहर आदि कृतियों में ऐसे गीतों की संख्या कम नहीं है जिनमें कवि ने एक ही भाव को गीत की परिसमाप्ति तक ले जाकर प्रभावान्विति प्राप्त की है। उनका 'लहर' संग्रह तो मानो ऐसे गीतों की निधि ही है।

गीत में मन की गहन भावना का सहजोद्रेक होता है। हैज़लिट ने कहा है कि मन की गहन भावना का संगीत से निकट का सम्बन्ध है।[17] सच है कि भाव चाहे गहरा हो या हल्का, संगीत में उसे स्वर के आरोह–अवरोह के सहारे प्रकट किया जाता है। संगीत अपने प्रभाव की स्थापना के लिए नाद–शक्ति का उपयोग करता है। वह स्वर, लय और ताल की गति पर स्थित है। काव्य में शब्दों से निष्पन्न होने वाले अर्थ का महत्व अधिक है, स्वर–योजना या नाद–व्यंजना का इतना नहीं परन्तु काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध चिरकालिक है। जब संगीत के लय–ताल आदि उपकरणों का काव्य के शब्द–अर्थ आदि उपकरणों से समुचित समन्वय होता है तब गीत–काव्य की सृष्टि होती है।

छायावादी गीतों में शास्त्रीय संगीत के प्रति आग्रह बहुत कम है। यद्यपि प्रसाद और निराला ने अपने कुछ गीतों की स्वर–लिपियां दी है तथा उन्हें शास्त्रीय पद्धति की गेयता या संगीतात्मकता के निकट लाने का प्रयास भी किया है तथापि उनके गीतों में मिलने वाला संगीत–तत्व कुछ भिन्न कोटि का है। उस पर अंग्रेजी और बंगला संगीत का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव निराला के गीतों पर तो अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उन्होंने स्वयं अंग्रेजी संगीत–पद्धति के अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को स्वीकार किया है। छायावादी कविता में उस संगीत का प्रयोग ही अधिक मात्रा में हुआ है जो स्वच्छन्द, मुक्त तथा बन्धन रहित है। इस संगीत को जनसाधारण का संगीत कह सकते हैं। सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में गाई जाने वाली कविताओं के लिए साज–बाज (ऑरकेस्ट्रा) की आवश्यकता नहीं होती। वैयक्तिक रूचि के अनुसार कवि–कंठ का ढलाव ही इस गेयता का साधक है। इस दृष्टि से मुक्त–छन्द (ब्लैंक वर्स) में मिलने वाला संगीत तो और भी स्वच्छन्द है। मुक्त–छन्द में लिखी गई छायावादी कविता में स्वर–मैत्री संभव नहीं, अलग–अलग पंक्तियों में अलग–अलग तरह से लयतत्व का आरोप करके उन्हें गाया जा सकता है।

छायावादी गीत न संगीतमय हैं, न पूर्णतया संगीतात्मक, वे केवल गीतात्मक है। साहित्यिक–गीतों को संगीत की कसौटी पर कसना न्यायसंगत भी नहीं है, क्योंकि संगीत में स्वर तथा श्रुति–मूर्छनाएं केवल रागिनी की अभिव्यक्ति के लिए होती हैं, जबकि साहित्यिक गीतों में विशेष शब्द, अलंकार तथा छन्द मिलकर विशेष भावों को अभिव्यक्त करते हैं। छायावादी कवि का संगीत अपना संगीत है। अपनी प्रतिमा के बल पर उपयुक्त शब्द चुनकर वह उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध करता है कि उसके गीत से स्वयं ही एक संगीत फूट पड़ता है।

झूम–झूम मृदु गरज–गरज घनघोर!
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!
झर झर झर निर्झर–गिरि–सर में,
घर, मरु, तरु–मर्मर, सागर में,
सरित–तड़ित–गति–चकित पवन में,
मन में, विजन–गहन–कानन में,
आनन–आनन में, रव–घोर कठोर–

राग अमर! अम्बर में भर निज रोर![18]

गीत में आकार का प्रश्न बड़े महत्व का है। संक्षिप्ता या लघुता (ब्रीविटी) गीत का एक ऐसा अंग है जो जो उसे अन्य कोटि की कविताओं से आकार या कलेवर की दृष्टि से बाह्य रूप में सरलता से अलग करके, सामान्यतया उसकी पहिचान बताता है। सूत्रों तथा सूक्तियों को छोड़कर केवल गीत ही काव्य की एक ऐसी विधा है जिसका आकार अत्यन्त लघु होता है। आंख भर देख लेने से ही उसे पहचाना जा सकता है। विद्यापति, सूर, तुलसी, तथा मीरा के गीत आकृति की दृष्टि से एकदम संक्षिप्त हैं। प्रेरणा, अनुभूति तथा भावना गीतात्मक आवेश का यह सामान्य क्रम है। आवेश की इन तीनों स्थितियों की अभिव्यक्ति गीत में होती है। इनसे आगे बढ़ना गीत में प्रभावहीनता को आमन्त्रित करना है। आवेश अधिक समय तक नहीं टिकता। उसकी समाप्ति के साथ ही गीत को भी समाप्त हो जाना चाहिए। चित्रात्मकता, अलंकारप्रियता तथा इतिवृत्तात्मकता के कारण भी गीत का आकार बढ़ता है। अतः इनके प्रति अनावश्यक आग्रह गीत के लिए घातक है। उसमें संक्षिप्तता गेयता के कारण और भी अधिक वांछनीय है क्योंकि संगीत कंठ के लिए एक अत्यन्त श्रम–साध्य व्यापार है। लम्बे गीतों को गाने में स्वर–शक्ति जवाब दे देती है तथा राग शिथिल हो जाता है। कुछ गीत लम्बे भी होते हैं तथा कुछ लम्बी कविताओं (महाकाव्य, खंडकाव्य आदि) में भी कुछ अंश गीतात्मक हुआ करते हैं लेकिन आदर्श गीत अनिवार्यतः आकार में लघु ही होता है। छायावादी कविता में ऐसे आदर्श गीतों की कमी नहीं है, कुछ गीत तो केवल कुछ ही पंक्तियों में समाप्त होकर गीत में संक्षिप्तता के तत्व की सफलता का निर्वाह कर सके हैं।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी तथा रामकुमार वर्मा सभी के कविता–संग्रहों में अनेक संक्षिप्त गीत मिलते हैं लेकिन निराला 'गीतिका' इस दृष्टि से एक आदर्श संकलन है। उसका बड़े से बड़ा गीत सात लघु पदों में समाप्त हुआ है। 'गीतिका' में दो–दो या तीन–तीन पदों वाले गीतों की संख्या अधिक है। इससे अधिक पदों वाले गीत दो–चार ही होंगे।

---

1 भारती, डॉ. धर्मवीर, सिद्ध साहित्य, पृ.– 264–266

2 द्विवेदी, डॉ. हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य, पृ.– 127

3 बेनीपुरी, रामवृक्ष, विद्यापति की पदावली (भूमिका), पृ.– 40

4 'निराला' सूर्यकांत त्रिपाठी, गीतिका की भूमिका, पृ.– 2

5 प्रसाद, जयशंकर, चन्द्रगुप्त, प्रथमअंक, दृश्य– 2

6 प्रसाद, जयशंकर, लहर, तीसरा संस्करण, पृ.– 11

7 प्रसाद, जयशंकर, झरना, पृ.– 81

8 'निराला' सूर्यकांत त्रिपाठी, गीतिका, गीत सं.– 4

9 'But there is found in every good poem a strain, a predominant note, which detemines the poem as belonging to one of these kinds rather than the other and here is the best proof of the value of classification and of the advantage of adhering to it'. – Essays in Criticism, Matthew Arnold, Second Series, 1891, pp. 137-138.

10 'Our earliest popular literature may be supposed to have taken the form of ballads, crude songs, based on local experiences, composed impromptu and chanted to the accompaniment of dance movements. Thus there were present from the begining the three essential elements of narrative, song, and action – the last, on doubt, often initiative in characterer. – The Typical Forms of English Literature, Upham, 1917, pp. 4-5

11 Typical forms of English Lit. Upham, p. 38, The Story World Literature, John Macy, p. 90, English Lyric, Oswald Doughty, P. XIV, Lyrical Poetry from Blake to Hardy, H. J. Grierson, P. 17 and An Introduction to the Study of Eng. Lit. Hudson, P. 96.

12 "साधारण गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदुखात्मक अनुभूति का वह शब्द–रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"– दीपशिख की भूमिका, महादेवी, पृ.– 21

13 'Another type of lyric has undertaken to dispense with the complement of music by making the verses musical in effect, by striving after the verbal melodies, that seem, as we often say, to sing themselves.' – Typical Forms of Eng. Lit., Upham, p. 40

14 'The Characteristic of the lyric is that it is the product of pure poetic energy unassociated with other energies and that lyric and poetry are synonymous terms'. – Quoted by H. J. Grierson in 'Lyrical Poetry from Blake to Hardy' p. 13

15 पंत, पल्लव, 'आंसू' शीर्षक कविता, पृ.– 22

16 प्रसाद, स्कन्द गुप्त, नाटक, प्रथम अंक, पृ.– 15

17 'There is a near connection between music and deep-rooted passion'. – Loci Critici, Essay to Hazlitt, p. 387

18 'निराला', परिमल, पृ.– 175